Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
February 2024 5(2), 530–540

STATUS OF TRIBAL RIGHTS DURING THE COLONIAL PERIOD
औपनिवेशिक दौर में आदिवासी अधिकारों की स्थिति

Rohit [1]

[1] Research Scholar, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i2.2024.2624

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

ABSTRACT

English: Since the 1990s, issues related to forests (recognising the traditional rights of tribal communities on forests, bringing forest wealth under the purview of village panchayats and giving autonomy to forest-dependent communities for the use of forest resources) have gained momentum. On one hand, the atmosphere of rebellion keeps heating up in various parts of the country regarding 'community rights' on forests. On the other hand, the tribals were looted by the UPA government under the guise of law. For example, laws were made by the governments to control forests, but at the cost of economic exclusion of the tribals. Thus, whenever it comes to issues related to tribals, we should always keep in mind that the problems of tribals have not arisen today or yesterday, but it has been going on since the colonial period. When, in the guise of modernisation and commercialisation, forests became a field of exploitation and earning by the British to extract more revenue and natural resources to migrate to Europe. Especially with regard to the wood used for timber and railway sleepers, the forest dwelling communities were deprived of their traditional forest rights.

Hindi: 1990 के दशक के बाद से वनों से संबंधित मुददों (वनों पर आदिवासी समुदायों के परम्परागत अधिकारों को मान्यता देना, वन सम्पदा को गाँव पंचायतो के दायरे में लाना तथा वनों पर निर्भर समुदायों को वन संसाधनों के इस्तेमाल हेतु स्वायतत्ता देना) ने काफ़ी तूल पकड़ा है। वनों पर 'सामुदायिक अधिकारों'[1] को लेकर जहाँ आये दिन देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोह का माहोल गरमाया रहता है। वहीं दूसरी ओर कानूनी आड़ में आदिवासियों को यू पी ए सरकार द्वारा लूटा जाता रहा। मसलन सरकारों के द्वारा लगाता वनों पर नियंत्रण हेतु कानूनों का निर्माण तो किया गया लेंकिन आदिवासियों के आर्थिक बहिष्कार की कीमत पर। इस प्रकार जब भी आदिवासियों से जुडे मुद्दों की बात आती है तो हमें सदैव यह जहन में रखना चाहिये कि आदिवासियों की समस्या आज या कल की पनपी नही हैं अपितु यह तो औपनिवेशिक काल से ही चली आ रही हैं। जब ज्यादा राजस्व व प्राकृतिक संसाधनों का यूरोप में पलायन करने के लिए आधुनिकीकरण और व्यापारीकरण की आड़ में वन अंग्रेजों के हाथों शोषण व कमाई का क्षेत्र बन गये। खासकर इमारती लकड़ी व रेलवे स्लीपर्स के लिये इस्तेमाल होने वाली लकड़ियों के संदर्भ में और इसके चलते ही वनों में रहने वाले समुदाया को उनके परम्परागत वन संबंधी अधिकारों से भी वंचित किया जाता रहा।

1. प्रस्तावना

इस दोहन का आरंभ तब हुआ जब 18वीं शताब्दी में व्यापारिक मंसूबो से आये अंग्रेजों ने भारतीय सरज़मीन पर इस तरह पाँव पसारे कि उन्होने एक तरफ़ तो प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया और वहीं दूसरी ओर प्रकृति पर निर्भर समुदायों को उनकी जीविका से वंचित कर परिधि पर लाकर खड़ा कर दिया। इसके अलावा यह बात भी गौर करने वाली है कि स्वतंत्रता के बाद भी तत्कालीन सरकार के द्वारा आदिवासियों की समस्या के लिये कुछ खास नही किया गया परिणामस्वरूप आज कई आदिवासी जनजातियां जीविका के सबसे निम्न स्तर को पाने के लिये भी संघर्ष करती है।

1 यहाँ सामुदायिक अध्किारों से संदर्भ उन आदिवासियों व वनों पर निर्भर समुदायों के वन अध्किारों से लिया गया है जिनकी सम्पूर्ण जीविका व धर्मिक मान्यताए वनों व वन संम्पदा पर निर्भर होती हैं।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य वनों के संदर्भ में औपनिवेशिक दौर में आये परिवर्तनों तथा वन सम्पदा पर निर्भर और परिधि पर खड़े समुदायों के सामुदायिक वन अधिकारों का विश्लेषण करना है। साथ ही यह जानना भी है कि अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए वनों पर निर्भर समुदायों को उनके सामुदायिक अधिकारों से बहिष्कृत कर उन्हें किस तरह परिधि पर स्थापित किया? किस प्रकार औपनिवेशिक सरकार ने कानून की आड़ में वनों पर अपना राजनीतिक नियंत्रणकारी शिंकजा स्थापित किया? आगे अध्ययन की प्रासांगिकता को स्पष्ट करने के लिये मुख्य रूप से औपनिवेशिक अंग्रेजी सरकार द्वारा वन सम्पदा के दोहन के तरीकों तथा उन संसाधनों पर और नियंत्रण साबित करने के लिये अपनाये गए तमाम अधिनियमों का संक्षिप्त विवरण दिया गया हैं।

इसी दृष्टि से इस शोध पत्र को मुख्य रूप से तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया हैं। पहले भाग में भारतीय वनों की ऐतिहासिक भैागोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए वनों पर निर्भर समुदायों की ऐतिहासिकता का विश्लेषण किया गया हैं। इसी भाग में आगे वनों के सिकुड़ने के कारणों और किस प्रकार औपनिवेशिक सरकार ने वनों के दोहन को बढ़ावा दिया इस विषय का भी विश्लेषण किया गया हैं। अध्याय के दूसरे भाग में औपनिवेशिक राज्य की साम्राज्यवादी और पूँजीवादी प्रवृति के साथ ‘वैज्ञानिक वन पद्धति’ तथा अंग्रेजों के साम्राज्यवादी नियंत्रण प्रवृति के चलते उनके द्वारा अपनाई गई मुख्यतः 1864 से 1947 तक की वन नीतियो का भी विस्तृत विश्लेषण किया गया हैं। अध्याय के अंतिम भाग में भारतीय वन सम्पदा के सामुदायिक अधिकारों के संदर्भ में पर्यावरणवादियों व अन्य वामपंथी विचारकाे के मध्य सामुदायिक अधिकारों के संदर्भ में उनका क्या नज़रिया रहा इसका भी संक्षिप्त विश्लेषण किया गया हैं।

2. भौगोलिक दृष्टि से भारतीय वन सम्पदा और सामुदायिक वन अधिकार

भौगोलिक दृष्टि से भारत धरती के 2-4 प्रतिशत हिस्से पर बसा हैं। भारत की इस क्षेत्रीय भौगोलिक सरंचना में काफ़ी विविधता पाई जाती हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्से की जमीन, उत्तर-पश्चिमी एशिया से मिलती हैं। उत्तर में हिमालय का विशाल पर्वत है जिसे भौगोलिक दृष्टि से युवा पर्वतो की श्रृखंला में समाहित किया गया हैं। यहाँ पर्वतो से निकलने वाली नदियाँ बहती देखी जा सकती है जो कई राज्यां की जीवनदायिनी नदियाँ मानी जाती हैं साथ ही यहाँ घने जंगल हैं जहाँ विभिन्न स्तनधारी प्रजातियाँ वास करती हैं। इसके साथ ही भारतीय वनों में कई विविध प्रकार के वृक्षो जैसे देवदार, चिड़, चंदन, ओक, टिक आदि दुर्लभ व अनमोल लकड़ियों के वृक्ष भी पाये जाते हैं। वहीं दुसरी ओर यहाँ बाँस की लकड़ीयाँ और कंटीला जंगल भी पाया जाता हैं।

इसी तरह भौगोलिक विविधता की दृष्टि से यहाँ प्रवाल भित्तियाँ और बफ़र् से भरी जगह एक साथ देखी जा सकती हैं। भारत में एक ओर थार मरूस्थल पाये जाते है तो वहीं दूसरी ओर पश्चिमी घाट भी हैं। यहाँ के घने जंगलो में 45,000 से भी ज्यादा वनस्पतियाँ व 500 से ज्यादा स्तनधारी प्रजातियाँ पाई जाती हैं।[2] साथ ही इन जंगलों में कई आदिवासी जनजातियाँ भी वास करती हैं जिनकी जीविका टीवी, क्रेडिटकार्ड या बड़े यातायात परिवहनो पर नही अपितु जंगलो में पाई जाने वाली वनस्पतियों और जानवरों पर निर्भर हैं और इन्हीं जंगलो में इनके धार्मिक, सास्ंकृतिक, सामाजिक सभी पहलुओं का निर्वाहन होता हैं। लेकिन विड़म्बना यह है कि भारत भौगोलिक दृष्टि से इतना सम्पन्न होने के बावजूद भी आज स्थिति यह हो चुकी है कि इन वनों पर निर्भर आदिवासी समुदाय अपनी वास्तविक पहचान को खोते जा रहे है और वह आज पूर्ण रूप से अपनी इस पिछड़ती हुई सामुदायिक जीविका, संस्कृति और मान्यताओं को बचाये रखने के संघर्ष में लगे हुए हैं। जिसका कारण जगंलो पर राज्य का बढ़ता हस्तक्षेप व कानूनी नकाब पहने हुए ‘कल्याणकारी राज्य’ का छलावा रहा है। जिसे नेहरू द्वारा अपनाई गई समाजवादी विचारधारा का ही बायप्रोडक्ट माना जा सकता है। कल्याणकारी राज्य की स्थापना तो प्रत्येक व्यक्ति तक समान अधिाकार पहुंचाने के लक्ष्य को लेकर की गई परन्तु वास्तव में यह वनों से आदिवासियों को पूर्ण रूप से बहिष्कृत करने की एक सटीक चाल रही। जिस पर कल्याण की चादर चडा कर समाज की सबसे पुरानी सभ्यता को नष्ट करने का पूरा प्रयास किया गया।

इस दखल का आरम्भ भारतीय औपनिवेशिक दौर में और बढ़ गया जिसका कारण अंग्रेजों द्वारा अधिक राजस्व एकत्र करना और फ़िर यहाँ की वन सम्पदा पर अपना सार्वभौमिक अधिकार स्थापित करने की लालसा रही हैं (*Guha: 1989*)[3]। यद्यपि ऐसा नही है कि औपनिवेशिक दौर से पहले वनों पर राज्य या राजा(*King*) का कोई हस्तक्षेप नही था और सम्पूर्ण वन सम्पदा स्थानीय समुदायों की व्यवस्था पर निर्भर थी। अपितु तब भी वनों व वन सम्पदा पर राजाओं का नियंत्रण था। लेकिन यह नियंत्रण काफ़ी सीमित और संकुचित था। ज्यादातर वन व्यवस्था स्थानीय समुदायों द्वारा ही व्यवस्थित थी परन्तु औपनिवेशिक दौर में यह हस्तक्षेप इस कदर बढ़ता चला गया कि इसका खामियाज़ा आज स्वतत्रंता के लगभग सात दशकों बाद भी वनों पर निर्भर आदिवासी समुदायों को भुगतना पड रहा हैं।

3. उपनिवेशवाद और वनों पर निर्भर समुदाय : ऐतिहासिक दृष्टि से

ऐतिहासिक दृष्टि से औपनिवशिक शासको ने भारतीय वन सम्पदा और वनों पर निर्भर समुदायों पर काफ़ी विपरीत प्रभाव डाला जिसका कारण अंग्रेजों द्वारा अपनाया गया व्यापारवादी नजरिया था। इतिहासकारों का मानना है कि औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजों ने प्रशासनिक संस्थाओं का विस्तार

2 Rangarajan, M. (2010). *Environmental Issues In India*- New Delhi, Pearson.

3 Guha] R. (1989)- *The Unquiet Woods: Scientific Forestry and Social Change of Sauth Asia*-] pp. 37- 40, New Delhi, Oxford University Press.

स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में न रखकर उपनिवेशवादी सत्ता की शासन अवश्यकतायों को मजबूती देने के लिए किया (*Sundar: 2009*)[4] जैसा की पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजों के अगमन से पहले भी स्थानीय शासक जंगलो में हस्तक्षेप किया करते थे परन्तु उनका यह हस्तक्षेप उपज का एक हिस्सा या कुछ अंश पेशगी तक ही सीमित होता था। मसलन उन्होंने कभी भी आदिवासियों द्वारा वन-भूमि के इस्तेमाल को गैर-कानूनी घोषित नही किया और न ही झूम खेती करने वाले बंजारा समुदायों की स्वायतत्ता को ही आघात पहुचाया (*Rangarajan:1996, Gadgil and Guha: 1992*)[5]

परिस्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन अंग्रेजी साम्राज्य के द्वारा भारतीय जमीन पर पाँव जम जाने के बाद आया जिसके चलते न सिफ़र् भारतीय वन भौगोलिक दृष्टि से सिकुड़ने लगे, अपितु वनों में रहने वाले आदिवासी समुदायों पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। यहां कुछ वामपंथी विचारकों का यह मानना है कि आदिवासी समुदायों के उत्पीड़न के विषय पेश किया गया सच एक अधुरा सच ही है, क्योकि अंग्रेजों के द्वारा भारतीय वनों पर नियंत्रण करने से पहले स्थानीय राजा महाराजा वनों पर अपना नियंत्रण रखा करतें थे जिसका प्रमाण हमें हिन्दु धर्म ग्रंथों जैसे रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद आदि में मिलते हैं जिनमें 'फ्रलोरा' और 'फ़ोना' जैसी वन संपदा के विषय में विस्तृत विवरण दिया गया हैं (*Jha: 1994*)[6]

लेकिन यहा यह बात झा द्वारा दिये गये एकतरफ़ा विवरण को उजागर करती है कि अंग्रेजी काल में उपनिवेशवादी शासकों ने वनों का जैसा सर्वनाश किया वैसा भारतीय शासकों ने कभी नही किया। ऐसा इसलिये क्योकि अंग्रेजों का मुख्य लक्ष्य अधिक मुनाफ़ा कमाना तथा भारतीय सम्पन्नता की तर्ज पर युरोप का विकास करना रहा। जिसके लिए उन्होंने भारतीय वनों का तेजी से दोहन आरम्भ कर दिया। जिससे अब अंग्रेजों के लिए भारतीय वन संसाधनों पर 'पूर्णतावादी' और 'सार्वसत्तावादी[7] नियंत्रण स्थापित करना आसान हो गया।

भारत में आदिवासियों पर उपनिवेशवादी सत्ता के प्रभाव को लेकर विद्धनो में काफ़ी मतभेद रहे हैं। औपनिवेशिक इतिहासकारों का मानना है कि अंग्रेजों ने भारत में कानून का शासन स्थापित किया और यहाँ व्यवस्थित सस्थागत ढांचा तैयार किया[8]। परन्तु वहीं राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मत है कि अंग्रेजों ने वनों के संबंध में जितने भी बदलाव किये उनका मकसद अपने साम्राज्यवादी हितों को पूरा करना था और इन्हीं हितों की पूर्ति के लिए उन्हाने समय-समय पर कानूनों का निर्माण किया, तथा इन कानूनों में अपने अनुसार ही बदलाव भी किये (*Chatterjee: 2004*)[9]। 'रामचंद्र गुहा' ने अपने अध्ययन में साम्राज्यवादी वन दोहन की प्रवृति के विषय में बड़ा ही विस्तृत विवरण देते हुए कहा है कि औपनिवेशिक दौर में वनों से संबधी नीतियों बनाते समय अंग्रेजों ने केवल अपने साम्राज्यवादी हितों को आगे रखा और वनों पर निर्भर समुदायों के अधिकारों व वनों से जुड़ी उनकी विभिन्न सांस्कृतिक व परम्परागत मान्यताओं व नियंत्रण को खारिज़ कर वनों पर अपना वर्चस्व स्थिापित किया (*Guha: 1983*)[10]

रामचंद्र गुहा द्वारा वनों के संदर्भ में पेश की गई इस विचारधारा की आलोचना करते हुए 'अर्चना प्रसाद' ने गुहा और रंगराजन द्वारा दिये गए विचारों को 'इकोलोजिकल रोमेन्टीसिसम'[11] की ओर झुका हुआ मानते हुये कहा कि दरसल इन विचारकों ने आदिवासीसमुदायों सहित वनों के सम्पूर्ण दोहन का कारण केवल औपनिवेशिक सरकार को माना, तथा अंग्रेजी काल के पहले के दौर को स्वर्ण काल की तरह पेश किया हैं (*Prasad: 2003*)। इसी प्रकार साम्राज्यवादी वन नीति के विषय में कुछ मार्क्सवादी विद्वानों ने भी अपने मतो को रखा है जैसे 'पार्थ चटर्जी' के अनुसार 'शक्ति प्रयोग' (*Mode of Power*) का तरीका वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से न केवल शक्ति सरंचना को अपने अधीन किया जा सकता है, अपितु उसके माध्यम से विभिन्न समाजों पर भी वर्चस्व स्थापित किया जा सकता हैं (*Chatterjee* : 2009)[12] मार्क्सवाद की इस शक्ति उपागम की आलोचना 'पर्यावरणवादी उपागम'

---

4 Sundar, N. (2009). *Gunda Dhur Ki Talash Mein% Edited Jitender Kumar and Harish Chandra Agarwal*. New Delhi, Penguein Books.

5 Guha, R. (1983). "*Forestry in British and Post-British India: A Historical Analysis"* Economic and Political Weekly, Vol.8, No.44, pp. 1882-1896.

6 Jha, L. K. (1994). *India's Forest Policies: Analysis and Appraisal*. New Delhi, pp. 1-2, Ashish Publication House.

7 राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत् सर्वसत्तावाद एक ऐसा पद है जो निरंकुशतावाद, अध्नियकतावाद और तानाशही जैसे पदों का समानार्थक समझा जाता हैं। 1923 में इतावली फासीवाद का एक प्रणाली के रूप में वर्णन के लिये गियोवानी अमेंडोला ने इसका प्रयोग किया। यह नये प्रकार का राज्य जीवन के हर क्षेत्रा को अपने दायरे में लेने के लिये तत्पर था। इस राज्य को मुसोलिनी ने टोटेलिटेरियन राज्य कहा। राज्य की इस सत्तावादी व्यवहार के विषय में मुसोलिनी का कथन था कि 'हर चीज़्ा राज्य के दायरे में है राज्य से बहार कुछ नही राज्य के विरू(कुछ नही।' विस्तृत विवेचन के लिये देखें अभय कुमार दुबे, ;2013द्ध.समाज विज्ञान विश्व कोश, खंड 6, पृष्ठ संख्या 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

8 राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत् सर्वसत्तावाद एक ऐसा पद है जो निरंकुशतावाद, अध्नियकतावाद और तानाशही जैसे पदों का समानार्थक समझा जाता हैं। 1923 में इतावली फासीवाद का एक प्रणाली के रूप में वर्णन के लिये गियोवानी अमेंडोला ने इसका प्रयोग किया। यह नये प्रकार का राज्य जीवन के हर क्षेत्रा को अपने दायरे में लेने के लिये तत्पर था। इस राज्य को मुसोलिनी ने टोटेलिटेरियन राज्य कहा। राज्य की इस सत्तावादी व्यवहार के विषय में मुसोलिनी का कथन था कि 'हर चीज़्ा राज्य के दायरे में है राज्य से बहार कुछ नही राज्य के विरू(कुछ नही।' विस्तृत विवेचन के लिये देखें अभय कुमार दुबे, ;2013द्ध.समाज विज्ञान विश्व कोश, खंड 6, पृष्ठ संख्या 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

9 Chatterjee, P. (2004). *The Politics of the Governed: Reflection on the Popular In Most of the World.* New Delhi, Permanent Black

10 Gadgil, M. and Guha, R. (1992)- *This Fissured Land: An Ecologial History Of India*- New Delhi, Oxford University Press, pp. 39-46. *Also see* Guha, R. (1983). ^^Forestry In British and Post -British India: An Historical Analysis** Economic and Political Weekly*, vol. 27, No. 29, Oct. 11. 2014.

11 अर्चना प्रसाद का 'इकोलोजिकल रोमेन्टीसिसम' से तात्पर्य वनों के संदर्भ में उन तमाम विचारको के मतो से है जिन्होने वनों व उन पर निर्भर समुदायों के अध्किारों के दोहन का मुख्य जिम्मेदार अंग्रेजी उपनिवेशवादी सरकार को ही माना तथा अंग्रेजी सरकार के पहले के दौर को अच्छा व सम्पूर्ण वन व्यवस्था को स्थानीय समुदायों के अनुवूफल माना। मसलन इस प्रकार इकोलोजिकल रोमेन्टीसिसम के अनुसार वनों का दोहन अंग्रेजो के आने के पश्चात् ही शुरू हुआ उनके भारत में आने से पहले वनों के संदर्भ में इस तरह का शोषण नही था। विस्तृत विवेचन के लिये देखें Prasad , A. (2003)- *Against Ecological Romanticism: Verrier Elwin and the Making of Anti Modern Tribal Identity*- New Delhi, Three Essays Collective.

12 Chatterjee] P. (2009). *The Politics of Governed: Reflection on the Popular Politics In Most of the World*- New Delhi, pp. 5-29, Permanent Black.

(*Ecological Approach*)[13] द्वारा बड़े सटीक शब्दों में मार्क्सवाद का आधार माना जाने वाला कारण 'उत्पादन प्रक्रिया' (*Mode of Production*)[14] के आधार पर की गई हैं। जिसके अनुसार मार्क्सवाद का आधार जो उत्पादन प्रक्रिया पर टिका है वह एक भौतिकवादी प्रक्रिया हैं। वहीं भारतीय वनों पर निर्भर समुदायों की समस्या भौतिकवाद के मुकाबले सामाजिक, पारम्परिक और सांस्कृतिक मान्यताओं पर निर्भर ज्यादा हैं। इसलिए पर्यावरणवादी उपागम मार्क्सवादी उपागम को मात्र एक मिथ्या ही मानते हैं मसलन इन सभी विवादों के मध्य एक बात यह है कि रामचन्द्र गुहा ने 1850 के बाद की वन स्थितियों का ही अध्ययन किया हैं। वहीं अन्य विचारक ग्रोव जिनका अध्ययन 1850 के पहले का है और चटर्जी जिन्होंने मार्क्सवादी नजरिये से भारतीय वन सम्पदा को अंग्रेजों द्वारा अधिशेष हड़पने की प्रवृति कहा हैं। मसलन इन सभी विचारकों के मध्य इस मत पर एकता है कि 1850 के बाद के दौर में अंग्रेजी वन नीति के केन्द्र में उनका साम्राज्यवादी हित ही रहा हैं।

4. रेलवे का विस्तार और वनों पर बढ़ता औपनिवेशिक नियंत्रण

जैसा की अब तक यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 16वीं शताब्दी के दौरान अंग्रेज व्यापार की लालसा में भारत आये। लेंकिन यहाँ कि सम्पन्नता को देखकर उन्होंने यहाँ पर धीरे-धीरे अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। इस तरह 1860 के दौरान ब्रिटेन विश्व के एक बड़े प्रतिनिधि के रूप में उभरा, जिसने असीमित रूप में आयरलैंड, साउथ अफ्रिका, उत्तरी-पूर्वी संयुक्त राज्य और भारत के वनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर यहाँ के वनों का दोहन करना आरम्भ कर दिया। जिसका मकसद अधिक मात्र मे टिक, टिम्बर जैसी कीमती व टिकाऊ लकड़ियों को प्राप्त करना तथा अधिक मुनाफ़ा कमाना था। इन लकड़ियों का इस्तेमाल इमारतों के निर्माण व लोहा पिघलाने और लड़ाकू जहाजों के निर्माण में किया जाता था। इस तरह 19वीं शताब्दी के आरम्भिक समय में अंग्रेजों ने मराठो को हरा कर रनतनागिरी के टिक के वृक्षों पर ईस्ट इंड़िया कम्पनी की दावेदारी की (*Guha and Gadgil: 1992*)[15]

अंग्रेजों द्वारा वनों पर वर्चस्व स्थापित करने के मुख्य दो मकसद थे पहला अधिक मात्र में ईमारती लकड़ी व टिम्बर की लकड़ी को हासिल कर यूरोप का विकास करना। दूसरा अधिक मात्र में भूमि को समतल बना कर खेती लायक बनाना। ताकि किसानों व वनों पर निर्भर समुदायों से अधिक राजस्व एकत्र किया जा सकें[16]। इसलिए अंग्रेजों ने तेजी से वृक्षों का सफ़ाया करना आरम्भ कर दिया। इस दोहनकारी प्रवृत्ति का विस्तार 1953 में हुआ। जब उपनिवेशवादी साम्राज्य ने भारतीय सम्पदा व भारी मात्र में खनन पदार्थो का पलायन करने के लिए रेलवे लाइन बिछाने का फ़ैसला किया। इस फ़ैसले से वनों की कटाई में जहाँ गति हुई वहीं दूसरी ओर इससे वनों पर भी दबाव बढ़ा क्योकि रेलवे लाइनों को हर तरह के क्षेत्रों से ले जाना था। तो इस तरह इस योजना के रास्ते में आने वाले सभी वृक्षो, जंगलो को काट दिया गया। साथ ही वनों में उपलब्ध वृक्षों को रेलवे लाइन में इस्तेमाल होने वाले स्लीपर्स की पूर्ति के लिए भी अंधाधुंध काटा जाने लगा।[17] उदाहरणत: इस दौरान हिमालय के गढवाल और कुमाऊ के क्षेत्रीय वनों को भी तेजी से काटा गया। जिसमे अंग्रेजों को यहाँ के स्थानीय शासको व बिचौलियों ने थोड़ा सा मुनाफ़ा पाने के लिए काफ़ी विस्तृत क्षेत्रों को अंग्रेजों को 'लीज़' पर देकर वनों का सफ़ाया करने दिया।

रेलवे लाइन के निर्माण कारणों के विषय में महेश रंगराजन और के- शिवरामकृष्णन ने अपनी पुस्तक *'Environmental History: Colonialism, Modernity and Nation*' में कहा है कि कोल की खानों के चालू होने से पहले तक रेल संचालन के लिए ईंधन के रूप में भी वनों की लकड़ी की प्राप्ति के लिये वनों का सफ़ाया किया जाता रहा। जिसकी माँग 1880 तक चरम पर थी। क्योकि इस दौरान शहरीकरण के कारण शहरो में फ़र्नीचर, नौकाओं आदि के लिए भी इन लकड़ियों की माँग बढ़ गई थी।[18] मसलन औपनिवेशिक दौर में तीन कारणों से वनों का दोहन किया गया। पहला कारण था 'अर्थव्यवस्था' (*Economy),* क्योकि अंग्रेजों का भारतीय सरज़मीन पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का कारण ही अधिक मात्र में 'धन' कमाना था। इसलिए 18वीं शताब्दी के मध्य तक औद्योगिक क्षेत्रों का तीव्र गति से निरंतर विकास किया गया। जिसका कारण पर्यावरणीय संसाधनों की उपलब्धता का ज्ञान रहा और इसी के द्वारा इस दौरान व्यापार, यातायात और अर्थव्यवस्था का विकास भी हुआ। साथ ही पर्यावरण पर बोझ भी बढ़ा जिसकी मार ने वनों पर निर्भर जीवो को हाशिये पर लाकर खड़ा कर दिया (*Wilkinson: 1988*)[19]

इस प्रकार प्राकृतिक सम्पदा का औद्योगिक रूप में उपयोग बढ़ने के परिणामस्वरूप जिस वन सम्पदा पर कभी वनों पर निर्भर रहने वाले समुदायों का नियंत्रण हुआ करता था अब उन स्त्रेतों पर औपनिवेशिक सत्ता ने अपना हक जमाना आरम्भ कर दिया। जिसका कारण अब व्यापार व लकड़ी से बने

---

13 पर्यावणीय उपागम या इकोलोजिकल अपरोच से यहाँ तात्पर्य वनों के संदर्भ में उभरे दो नजरियो मानवकेन्द्रित व पर्यावरणीय नजरिये के मध्य विवाद से हैं। जहाँ मानवकेन्द्रित नजरिया मानव को केन्द्र में रखते हुये बाकी सभी जीवों को उसके विकास के लिये मात्रा सहायक मानता है वहीं पर्यावरणवादी नजरिया इसे नकारते हुए यह मानता है कि दुनिया के सभी जीवों का समान महत्व है और इसलिए किसी भी मनुष्य को यह हक बिल्कुल नही है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे जीवों का शोषण करें।

14 उत्पादन प्रक्रिया सम्पूर्ण माक्र्सवादी उपागम का निचोड़ कहा जा सकता है क्योकि माक्र्स के अनुसार वर्चस्वकारी समुदाय सदैव कमजोर लोगो के स्त्रोतो को चुरा कर उनके अध्शिेष को हथिया लेता है जो उनके शोषण का मुख्य कारण होता हैं। इसी नजरिये को पार्था चटर्जी ने वनों के सम्बन्ध् में रखा तथा उपनिवेशवादी शक्ति को आदिवासी समुदायों के शोषण का कारण बताया। विस्तृत विवेचन के लिये देखें Chatterjee, P. (2004). *The Politics of the Governed: Reflection on the Popular Politics In Most of the World*. New Delhi, pp. 11-29, Permanent Black.

15 Gadgil, M. and Guha, R. (1992). *This Fissured Land: An Ecological History of India*, New Delhi, pp. 40-46, Oxford University Press.

16 Ibid.

17 Sundar, N. (2009). *Legal Grounds: Natural Resources, Identity and Law In Jharkhand*- Delhi University, pp.30.Oxford University Press.

18 Rangarajan, M. (1996). *Fencing the Forest: Conservation and Ecological Change in India's Central Provinces, 1860-1914*- Delhi, Oxford University Press.

19 Wilkinson, R.G. (1988). *The English Industrial Revolution*- Cambridge, Cambridge University Press.

उत्पाददों के उद्योगों का विस्तार होना था। फ़लस्वरूप औपनिवेशक सत्ता ने अपने पाँव अमेरिका, अर्जेटीना, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड तक पसारे व एक नये यूरोप का निर्माण किया।[20] इस तरह भारत अब टिम्बर, टिक, ओक, कपास, जूट, चाय आदि कीमती स्त्रेतों का एक निर्यातक बन कर रह गया। जिसके अर्न्तगत् भारत अब बर्मा में चावल और टिक की लकड़ी का निर्यातक, पश्चिमी भारत में चीनी का, ब्राजील में रब्बड़ और कॉफ़ी का निर्यातक बनकर उभरा। दूसरा कारण 'सामाजिक सगंठन'(*Social Institutions)* था। प्राचीन काल में भारतीय समुदाय प्रायः परस्पर सम्पर्क *"Face to Face"* [21] जुड़ाव के जरिये किया करते थे। लेकिन अंग्रेजों के भारत आने के बाद व आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण यह सम्पर्क एक निपूर्ण संहिताबद्ध सम्पर्क में बदल गया। जिसमे अंग्रेजों ने भारत के लोगों को ही शिक्षा व तकनीकी आदि का ज्ञान देकर अब लिखित रूप में वनों के दोहन का काम करना आरम्भ किया ताकि लिखित दस्तावेजों द्वारा वनों का दोहन किया जा सकें। इस तरह एक निपूर्ण मानववाद के माध्यम से औपनिवेशिक शासन ने वनों पर एक सत्तावादी नियंत्रण स्थापित करते हुए प्राचीन सामुदायिक नियंत्रण के अधिकार को पूर्णतः नकार दिया (*Guha: 1983*)[22] तीसरा कारण 'विचारधारा'*(Ideology*) रहा। यह वह मजबूत कारण था जिसके प्रभाव में आकर अंग्रेजों ने भारतीय सामुदायिक वन सरक्षंण की प्रक्रिया को फ़ुहड़ व अवैज्ञानिक घोषित कर 'साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री' के द्वारा वनों पर वर्चस्व स्थापित किया। साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री का विश्लेषण अध्याय के दुसरे भाग में किया जायेगा जिसमें यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस तरह 'साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री' द्वारा भारतीय वन सम्पदा पर ब्रिटिश शिकंजा और कसा तथा इस सब में किस प्रकार साम्राज्यवादी राज्य एक पूँजीवादी राज्य बन कर उभरा। जिसमें विभिन्न नीतियों के निर्माण द्वारा न सिफ़र् वनों का विभाजन किया गया। अपितु वन नीतियों के द्वारा वनों का और तीव्रता से दोहन भी किया। इसमें वन विभाग ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई?

5. साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री और औपनिवेशिक राज्य

औपनिवेशिक शासन[23] व्यवस्था ने अपनी साम्राज्यवादी मंशा को पूरा करने के लिए अब घने वन क्षेत्रों में सार्वजनिक जनगणना की व्यवस्था को लागू किया। जिसके माध्यम से वनों में रहने वाले समुदायों के साथ विस्तृत वन सम्पदा का लिखित ब्यौरा रखना आसान हो गया। सुदीप्त कविराज इस विषय में अपनी पुस्तक *"Politics of India"* में कहते है कि जनगणना का हथियार अंग्रेजों ने वनों पर निर्भर समुदायों पर इसलिए दागा क्योकि अंग्रेज मानने लगे थे कि राज्य को सार्वजनिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार है अपने इन्ही मंसूबो की पूर्ति हेतु अंग्रेजों ने भारत में जनगणना की व्यवस्था लागू की। इस तरह अंग्रेजों के लिए वनों का दोहन करना और समुदायों को उनकी सम्पदा से वंचित करना और भी आसान हो गया।

मसलन अंग्रेजों के पास उनके द्वारा अपनी सत्ता को वैध और न्यायिक ठहराने के मुख्य दो तरीके रहें। पहला भारतीय समुदायों और अपने मध्य (अंग्रेजों) समानता बताना जो उन्होंने 'वैज्ञानिक ज्ञान'*(Scientific Knowledge*)[24] के द्वारा किया। दूसरा अपने व भारतीय आदिवासियों के मध्य असमानता को बताना तथा वैज्ञानिक ज्ञान को 'स्थानीय ज्ञान' (*Local Knowledge*)[25] पर थोपना, और यह उन्होंने 'साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री' के द्वारा किया। इस तकनीकी को ग्रोव व माईकल्स अदास ने वर्चस्व की 'तकनीकी विचारधारा' कहा(*Benjamin: 2006*)[26] इसी साम्राज्यवादी मत को आगे बढ़ाते हुए प्रकृतिवादी इतिहासकारों (*Naturalist Historieans*)[27] ने अंग्रेजों को 'राजस्व जमाखोर' कहा। जिनका सर्वप्रथम मकसद अधिक राजस्व एकत्र करना था। इसलिए 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान वनों पर अपना अधिपत्य जमाते समय अंग्रेजी सत्ता के मस्तिष्क से 'राजस्व' के अलावा सब गायब था। साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री के अन्तर्गत् ब्रिटिश नौकरशाहों ने वनों को 'ब्लॉक'*(Block)* [28] में बाँट कर उसे सामुदायिक सम्पदा न

20 Sundar, N. (2009). *Legal Grounds: Natural Resources, Identity and Law In Jharkhand* Delhi University, pp.31-32, Oxford University Press.

21 एन्डरसन *Face to Face* राष्ट्रवाद के विषय में बताते हुए कहते है कि औपनिवेशिक दौर में पहले जब संचार का इतना विकास नही हुआ था तब मानव समुदाय छोटे-छोटे समुदायों में रहा करते थे तथा तब उनका संवाद प्रायः आमने सामने सम्पर्क के द्वारा हुआ करता था। विस्तृत विवेचन के लिये देखें। Anderson, B. (1983). *Imagined Communities Reflections On the Origin and Growth of Nationalism*, London.

22 Guha, R. (1983). "Forestry in British and Post -British India: A Historical Analysis"- *Economic and Political Weekly*, Vol. 18, No. 44(Oct. 29. 1983), pp. 1882-1896.

23 साइंटिपिफक फाॅरेस्ट्री अंगे्रजों द्वारा भारत में लागू की गई वो नीति थी जिसके माध्यम से उन्होने आदिवासियों द्वारा वन सरंक्षण की प(ति को नकार कर वैज्ञानिकता के आधर पर लागू की गई कृषि वन सरंक्षण प(ति को उपयोगी माना तथा कानून की आड़ में इसे जबरन आदिवासियों पर थोपा। तथा औद्योगिक रूप से उपयोगि वृक्षो के रोपण व विकास पर जोर दिया। अध्कि विस्तृत विवरण के लिये देखें Guha, R. (1983). Forestry In British and Post-British India: A Historical Analysis- *Economic and Political Weekly*, Vol.18, No.44. (Oct. 29. 1983), pp. 1882-1896.

24 वैज्ञानिक ज्ञान या साईन्टीफिक नाॅलिज से यहाँ तात्पर्य उस औपनिवेशिक वर्चस्वपूर्ण ज्ञान से है जिसने आदिवासियों द्वारा अपनाये जाने वाले वन सरंक्षण के तरीको को नकार कर उन पर पश्चिमी वन सरंक्षण के तरीको को थोपा तथा स्थानीय ज्ञान को पिछड़ा हुआ व हानिकारक बताया।

25 स्थानीय ज्ञान या लोकल नाॅलिज से अभिप्राय उस ज्ञान से लिया गया है जो वनों पर निर्भर आदिवासी समुदायों द्वारा वन सरंक्षण के लिये अपनाई जाने वाली परम्परागत मान्यताओं व ज्ञान पर आधरित थी। अध्कि विस्तृत विवरण के लिये देखें वही पृष्ठ.

26 Weil, B. (2006)- Conservation, Exploitation and Culture In the Forest Service 1875-1927- *Economic and Political Weekly*,Vol.11, pp. 319-343.

27 पर्यावरणीय उपागम के समर्थको ने पर्यावरण को केन्द्र में रखते हुये उन पर निर्भर जीवो व आदिवासी समुदायों को वनों का सबसे पहला व मूल अध्किारी माना। इस विषय में विस्तृत विवेचन के लिये देखें Scott, J. C. (1998). *Seeing Like A State: How Certain Schemes to Improve The Human Condition Have Failed*- New Haven and London, Yale University Press.

28 पर्यावरणीय उपागम के समर्थको ने पर्यावरण को केन्द्र में रखते हुये उन पर निर्भर जीवो व आदिवासी समुदायों को वनों का सबसे पहला व मूल अध्किारी माना। इस विषय में विस्तृत विवेचन के लिये देखें Scott, J. C. (1998). *Seeing Like A State: How Certain Schemes to Improve The Human Condition Have Failed*- New Haven and London, Yale University Press.

कह कर राज्य सम्पदा घोषित किया। इस प्रकार इस प्रक्रिया में उन्होने उपयोगितावादी नजरिया अपनाते हुए बाजारवादी दृष्टि से उपयोगी प्राकृतिक संसाधनों जिसमें 'फ्रलोरा' व 'फ़ोना' शामिल थे को अन्य प्राकृतिक संसाधनों से अलग कर दिया। इस तरह व्यापारवादी आवश्यकता की पूर्ति के लिये इन वृक्षों को लगातार काटा जाने लगा। [29]

6. वन विभाग का निर्माण और औपनिवेशिक सत्ता का वनों पर बढ़ता नियंत्रणकारी वर्चस्व

भारतीय वन सम्पदा के इतिहास में एक बड़ा परिवर्तन 1950 में आया। जब जनगणना के माध्यम से लगभग सभी क्षेत्रों में सैनिक टुकड़ियाँ स्थापित कर वहाँ झूम खेती व मिश्रित खेती को बंद करवा कर लिखित नियंत्रण के अन्तर्गत् अंग्रेजी सरकार ने बिना किसी अपवाद के नकद फ़सले (*Cash Crop*) उगाने का आदेश दिया। साथ ही मुनाफ़ा व प्राकृतिक स्त्रेतों के पलायन को बढ़ावा देने के लिए और यातायात को सुगम बनाने हेतु 1953 में रेलवे लाइन का विस्तार किया। इस तरह वनों से वृक्षों का सफ़ाया और तेजी से किया जाने लगा (*Tucker: 2012*)[30] वन दोहन के इस विक्राल रूप को और बढ़ावा व वैधता 1864 में मिली। जब अंग्रेजी सरकार द्वारा 'वन विभाग' का निर्माण कर दिया गया। इस विभाग का सर्वप्रथम कार्य ही कीमती लकड़ी वाले क्षेत्रों का निर्धारण कर वहाँ से उन समुदायों को बहिष्कृत कर देना था जो इन वृक्षों व वन क्षेत्रों पर अपना परम्परागत अधिकार होने का दावा करते थे।[31]

औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजों द्वारा इन लकड़ियों पर किस स्तर तक नियंत्रण जमाया गया। इसको नीचे दी गई तालिका के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है जिसमे मुख्य रूप से 1869 से 1925 तक के आंकडो को दर्शाया गया है जो निम्न प्रकार से हैं

Revenue and Surplus of the Forest Department 1869-1925

Yearly Average For the Period Column 2 For the Period	*Revenue (RS.Million)*	*Surplus (RS.Million)*	*Percentage of Column 3 to2*
1869-70 to 1873-74	5.6	1.7	30
1874-75 to 1878-79	6.7	2.1	31
1879-80 to 1883-84	8.8	3.2	36
1884-85 to 1888-89	11.7	4.2	36
1889-90 to 1898-94	15.9	7.3	46
1894-95 to 1898-99	17.7	7.9	45
1899-1900 to 1903-04	19.7	8.4	43
1904-1905 to 1908-09	25.7	11.6	45
1909-1910 to 1913-14	29.6	13.2	45
1914-1915 to 1918-19	37.1	16.0	43
1919-1920 to 1923-24	55.2	18.5	34
1924 to 1925	56.7	21.3	38

Source: E.P. Stebbing, ^Forests of India', III, pp.620.

Quorted in: Chhattrapati Singh, Common Property and Common Poverty', pp. 16[32]

इस संदर्भ में उपर दिखाई गई तालिका में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार 1864 से 1925 तक वन विभाग ने प्रत्येक वर्ष 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक मुनाफ़ा कमाया जिसका एक मात्र स्त्रेत वन उत्पाद ही थे। इस तरह 19वीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजी औपनिवेशिक राज्य ने भारतीय वनों पर अपना एकाधिकार स्पष्ट रूप से स्थापित कर लिया था। फ़लतः वनों पर अंग्रेजों ने नियंत्रण स्थापित करना अपना 'विशेषाधिकार' मान लिया था। इस अधिकार को अंग्रेजों ने सभी परम्परागत व सामुदायिक अधिकारों से ऊपर व गैर अपीलीय अधिकार माना। मसलन इस अधिकार को '*All India Act 1865'* के रूप मे पूरे भारत वर्ष में लागू किया गया। लेकिन जिस मकसद से इस अधिनियम को लाया गया था वह सफ़ल न हो सका। इसका मुख्य कारण यह रहा कि यह अधिनियम केवल उन क्षेत्रों तक ही सीमित था जिन्हें आंरक्षित घोषित किया गया था। परिणामस्वरूप वन विभाग

29 Ibid, pp. 14.

30 Tucker, R. P. (2012). *A Forest History of India-* in *Forest Management and Imperal Politics Thana District Bombay 1823-1887.* New Delhi, pp. 1-27, Sage Publications.

31 Guha, R. (1989). *The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance In the Himalaya-* New Delhi, Oxford University Press.

32 Singh, C. (1986). *Common Property and Common Poverty: India's Forests, Forest Dwellers and the Law-* Delhi, Oxford University Press.

उन क्षेत्रों में निष्क्रिय ही रहा जिन्हें उसने आंरक्षित नही किया था और इस तरह वह उन क्षेत्रों से आदिवासी समुदायों की उपस्थिति को नकार नही सकता था।

अतः वनों पर और पकड़ बनाने के लिए 1865 के अधिनियम के 13 वर्षो बाद 1878 में एक और अधिनियम बनाया गया, जिसके माध्यम से अब वनों पर औपनिवेशिक राज्य के नियंत्रण को प्रत्यक्ष मूर्तता दी गई।[33] इस अधिनियम में अंग्रेजों ने वनों पर आदिवासीसामुदायिक अधिकारों की हकदारी को 'रियायत' (छूट) में बदल दिया गया। इसके संदर्भ में यह कहा गया कि सदियों से वनों के उत्पादों का इस्तेमाल स्थानीय आदिवासियों द्वारा किया जाना उनका कोई पुश्तैनी अधिकार नही है अपितु वर्तमान शासन व्यवस्था द्वारा दी गई रियायती सुविधा मात्र हैं। इसके मुताबिक वन उत्पादों का उपभोग अब केवल वर्तमान शासकों द्वारा किया जा सकता है और क्योकि इस समय अंग्रेजी उपनिवेशवादी व्यवस्था वहाँ की स्थानीय शासक थे इसलिये इस सुविधा का इस्तेमाल करने के अधिकार को उन्होंने अपना सार्वभौमिक अधिकार माना।[34] वही औपनिवेशिक शासन ने अब साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री के जरिये टिम्बर, टीक, ओक, चिड़ आदि जैसे वृक्षों को अपने नियण में लेकर उन्हें व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी घोषित कर दिया। यह काम वन विभाग द्वारा अंग्रेजी नौकरशाहो ने वनों का 'त्रि स्तरीय' विभाजन करके किया। जिसकी प्रथम श्रेणी में 'आरक्षित वनों' *(Reserved Forest),* द्वितीय श्रेणी में 'संरक्षित वनों' *(Protected Forest)* और तीसरी श्रेणी में 'ग्रामीण वनों' *(Villege Forest)* को रखा गया। पहली श्रेणी को पूर्णतः राज्य नियंत्रण में रखते हुये आदिवासियो द्वारा इन वृक्षों तथा किसी भी प्रकार के वन उत्पादन के इस्तेमाल को पूर्ण रूप से वर्जित घोषित किया। दूसरी श्रेणी में संरक्षित वन थे जिन पर राज्य का नियंत्रण तो था परन्तु इन क्षेत्रे से आदिवासी समुदायों को नीचे गिरे हुए फ़लो, लकड़ियों आदि को स्थानीय नियंत्रको की अनुमति से उठा कर उपयोग करने के अधिकार को दे दिया गया। तीसरी श्रेणी में ग्रामीण वनों को रखा गया जिन पर राज्य ने राजस्व के माध्यम से अपना नियंत्रण स्थापित किया। इस प्रकार वन विभाग द्वारा कानूनी रूप से भी राज्य अकेला सम्पूर्ण वन सम्पदा का अधिकारी बन गया तथा सम्पूर्ण वन सम्पदा को केन्द्र की सम्पत्ति के रूप में बदल दिया। परिणामस्वरूप वनों में रहने वाले समुदाय अब पूर्णतः वनों से वंचित कर दिये गए (*Guha: 1989*)[35]इस तरह जो कभी वनों के नियंत्रक हुआ करते थे अब वह अपनी ही जीविका हेतु परिधि पर आ खड़े हुए थे।[36]

आदिवासियों की ऐसी स्थिति के विषय में कुछ मार्क्सवादी विचारकों जैसे अर्चना प्रसाद ने अपनी पुस्तक *'Environmentalism and the Left : Legislating Forests in Colonial India'* में साम्राज्यवादी नियंत्रण के कायम रहने के मुख्य तीन कारण बताए है जिनके चलते विकास के नाम पर वनों पर निर्भर रहने वाले आदिवासीलोगों के अधिकारों को औपनिवेशिक दौरा में लूटा गया। पहले तो औद्योगिक दृष्टि से वनों को महत्वपूर्ण मान कर खानाबदोश समुदायों को उन्हीं की वन सम्पदा से वंचित कर दिया गया और फ़िर झूम खेती करने वाले समुदायों को वनों से बहिष्कृत कर उन्हें परजीवी घोषित कर दिया। दूसरा कारण अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा वनों का और वन समुदायों की समुदायिकता को हानि पहुँचाने का कारण वन विभाग, जनगणना और साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री रहा तथा तीसरा व अंतिम कारण विधि के शासन की आड़ में कानूनी रूप से वनों को व्यापारिक दृष्टि से आंरक्षित करना था इन्हीं कारणों से वनों पर निर्भर रहने वाले समुदाय पूर्ण रूप से अपने सामुदायिक अधिकारों हेतु एक दम परिधि पर आ खड़े हुए जहाँ वह अपने सारे परम्परागत अधिकारों से वंचित हो चुके थे। [37]

7. उपनिवेशवाद और औपनिवेशिक वन नीतियों

औपनिवेशिक दौर से ही राज्य मुख्य दो तरीकों से अपना वन संपदा पर नियंत्रण स्थापित करता हुआ आया हैं। एक तो कानूनी न्यायिक नौकरशाही के द्वारा और दूसरा सामाजिक सगंठनों की गोलबंदी द्वारा। अतः राज्य की इस सत्ताधारी व नियंत्रणकारी प्रवृति व कूटनीतिक व्यवहार प्रक्रिया के विषय में अलग-अलग मतों को रखा जाता रहा हैं। जैसे वर्धन ने अपनी पुस्तक" *The Political Ecomomy of Development In India*" में राज्य को पूँजीवादी बुर्जूआ किसानों, राजनीतिक नौकरशाहों व अफ़सरों का पुंज माना है, जिसके गठबंधन से ही आधुनिक राज्य का निर्माण हुआ।[38] वहीं कविराज का मत है कि राज्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति के ज्ञान के लिए राज्य के इतिहास को नही अपितु उसके भीतरी गठबंधनों व संबंधो को समझना चाहिए।[39] इसी तरह अन्य विचारक राज्य को समझने के लिए उनके शक्ति गुटों को समझने पर जोर देते हैं।[40] अतः इस तरह राज्य के संगठन अपने आप में ऐतिहासिक और सामाजिक हित समुहों का 'क्रिस्टलीकरण' होते हैं।[41] जो राज्य सरंचना के भीतर ही एक वैध संगठित सरंचना का निर्माण कर विभिन्न सामूहिक गुटों के हितों को परिभाषित करता हैं (*Miliband: 1973*)[42] इस संदर्भ में यदि अधिकारवादी नजरिये की तरफ़ रूख किया जाये तो उसके अनुसार राज्य ने समय-समय पर वन नीतियों का निर्माण कर वन सम्पदा पर नियंत्रण को और मजबूत करने का प्रयत्न किया।

---

33 Pathak, A. (1994). *Contested Domains: The State, Peasants and Forests In Contemporary India*- New York, pp. 10-56, Sage Publications.
34 Guha, R. (1983). "Forestry in British and Post-British India: A Historical Analysis** *Economic and Political Weekly*, Vol. 18, No. 441, pp. 1884-1896.
35 Guha, R. (1989). "Scientific Forestry and Social Change in Uttrakhand" *Economic and Political Weekly*, vol. 20, No. 45, pp.1935-56.
36 Prasad, A. (2004). *Environmentalism and the Left: Contemporary Debates and Future Agendas In Tribal Areas*- New Delhi, pp. 12-31, Left Words.
37 Pathak, A. (1994). *Contested Domains: The State, Peasants and Forests In Contemporary India*- New York, pp. 10-54. Sage Publications.
38 Bardhan, P. (1984). *The Political Economy of Development in India. pp.10,* Oxford, Blackwell.
39 Kaviraj, S. (1997). *Politics in India*- Delhi, Oxford University Press.
40 Poulantzas, N. (1978). *Political Power and Social Classes*- London: Verso.
41 Therborn, G. (1980). *What Does the Ruling Class Do When It Rules*? London: Verso.
42 Miliband, R. (1973). *The State In Capitalist Society*- London: Quartet Books Limited, pp. 11-50.

1864 से पहले अर्थात् वन विभाग के बनने से पहले तक वन क्षेत्रों का प्रबंधन स्थानीय समुदायों के हाथो में ही था लेकिन वन विभाग की स्थापना के बाद वन क्षेत्रे पर आदिवासी अधिकारों का खिसक कर औपनिवेशिक सरकार के हाथो में आना और फ़िर वन सम्पदा पर अंग्रेजी नियंत्रण जमाना व आदिवासी समुदायों के पारम्पारिक अधिकारों का छिनना एक राजनीतिक पड़ाव था। वहीं आगे चलकर वैज्ञानिक सोच का स्थानीय वन प्रबंधन की सोच पर हावी होना एक सामाजिक पड़ाव था। जिसके कारण स्थानीय आदिवासियों का वनों में प्रवेश रोक कर वनों पर बाजारवादी दृष्टिकोण को थोप दिया। इसी कारण औपनिवेशिक दौर में राज्य द्वारा विभिन्न वन नीतियों बनाई गई (*Gadgil: 1992*)[43]

1885 में अंग्रेजों ने भारतीय राज्य व्यवस्था द्वारा 'बॉम्बे फ़ॉरेस्ट इनक्यूआयरी कमीशन 1885' की स्थापना की गई। इसी अधिनियम के अन्तर्गत् वन विभाग ने वनों को आंरक्षित और सरंक्षित वनों की श्रेणी में विभाजित किया और आदिवासियों को उनके ही वनों से कानूनी रूप से भी बहिष्कृत कर दिया। यह विभाजन 19वीं शताब्दी के मध्य तक सम्पूर्ण भारतीय वनों पर लागू कर दिया गया। परिणामस्वरूप वन सम्पदा को अब पूर्ण रूप से अंग्रेजी नौकरशाही की नियंत्रणकारी निगरानी में रखा गया जिससे वनों पर निर्भर आदिवासीसमुदाय जंगलों पर मात्र किरायाजीवी बन कर रह गए। जो अब केवल इमारती लकड़ी को सालाना नीलामी पर नौकरशाहों से खरीद सकते थे। इन लकड़ियों का मूल्य भी सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता था। 1882 से 1889 तक राज्य ने गाँव की सांझी वन सम्पदा पर भी अपना नियंत्रण घोषित कर दिया था। [44]

इसी प्रकार 'भारतीय वन अधिनियम 1927' के नाम से एक और अधिनियम लाया गया। इस अधिनियम ने भी वनों पर आदिवासीसामुदायिक अधिकारों को बहिष्कृत कर केवल राजस्व एकत्र प्रवृति को ही महत्व दिया। इस अधिनियम को 1978 के वन अधिनियम में फ़िर से लागू किया गया था। वास्तव में इस अधिनियम को 1927 के ही वन अधिनियम का विस्तृत रूप कहा गया। क्योकि इस अधिनियम के लगभग 84 सेेक्शन ऐसे थे जिनमें से 81 सेक्शन हुबहु 1927 के अधिनियम का ही विस्तृत रूप था।[45] इस अधिनियम में कोई भी ऐसी नीति नही थी जो संगत हो क्योकि इस अधिनियम के अन्तर्गत् राज्य को किसी भी वन भूमि या बंजर जमीन पर नियम बनाने व उसके उत्पादों पर नियंत्रण स्थापित करने का असीमित अधिकार दिया गया। जिसके द्वारा राज्य किसी भी वन या भूमि को आंरक्षित कर सकता था।

इस अधिनियम के सेक्शन 4 के अन्तर्गत् यह प्रावधान किया गया कि राज्य वन सेटलमेंट अधिकारी द्वारा गेजेट को यह निर्देश दे सकता था कि वह भूमि को आंरक्षित कर वहाँ राज्य के अधिकार को सुनिश्चित करें और ऐसा करने के बाद एक साधारण नोटिस जारी कर राज्य उस वन भूमि से आदिवासियों को बहिष्कृत कर उस भूमि को राज्य भूमि घोषित कर सकती थी। परन्तु ऐसी स्थिति में अगर कोई व्यक्ति भूमि पर मालिकाना हक साबित करना चाहता था। तो वह इस अधिनियम के सेक्शन 5 के द्वारा नोटिस जारी होने के तीन महिनों के भीतर उस जमीन पर लिखित कानूनी दावे का प्रमाण दे कर भूमि पर अपना निजि दावा कर सकता था। साथ ही इस अधिनियम में यह प्रावधान भी किया गया था कि अगर व्यक्ति कोई दावा साबित नही कर पाता है तो उस भूमि पर राज्य का अधिकार हो जायेगा। इस अधिनियम का एक अन्य पहलु यह भी था कि अगर कोई व्यक्ति अपना निजि स्वामित्व साबित करने मे सफ़ल हो जाता है तो राज्य 'भूमि अधिग्रहण अधिनियम'(*Land Acquistion Act*) और 'राज्य अधिनियम'*(*State Act*) के जरिये सार्वजनिक उद्धेश्य के लिए भूमि अधिग्रहण कर सकता हैं। इस तरह इस अधिनियम के द्वारा लगातार वनों पर राज्य ने अपने नियंत्रण को स्थापित करने के प्रयास किये व उन प्रयासों को लगातार कानूनी जामा पहनाने के कारण उपनिवेशवादी वन विश्लेषण में जनता और सरकार के मध्य काफ़ी असन्तुलन उत्पन्न हुए, जिसके कारण भारत में सामाजिक संघर्षो को भी गति मिली। अध्याय के अंतिम भाग में औपनिवेशिक दौर में उठे आदिवासीविद्रोहो का विश्लेषण किया जायेगा तथा इस सब के लिए पर्यावरणवादियों व अन्य इतिहासकारों के मध्य आदिवासी समुदायों के अधिकारों के संदर्भ में क्या विवाद रहा उस पर भी नजर डाली जाएगी।

8. औपनिवेशिक दौर में आदिवासीसामुदायिक अधिकार और जन विद्रोह

भारतीय वनों में क्षेत्रीय स्तरों पर उठने वाले जन विद्रोह का कारण उपनिवेशिक काल में सरकारी वानिकी के द्वारा वनों पर साम्राज्यवादी नियंत्रण को स्थापित करना रहा। जिसके कारण जगह-जगह पर आदिवासीसमुदायों द्वारा विद्रोह किये जाने लगे। अन्य कारण यह भी रहा कि अब अंग्रेजों द्वारा बनाये गये नए कानूनों के कारण नौकरशाहों द्वारा शिकारी और सग्रहणकर्ता समुदाय (*Hunter, Gatherer, Gatherer Community*) झूम खेती कृषक, किसान, खानाबदोश, पशुपालक, दस्तकार आदि को वनों में जाने से बिल्कुल ही रोक दिया गया जो इन समुदायों के लिए काफ़ी नुकसानदायक था। क्योकि वनों में प्रवेश व वन उत्पादों का इस्तेमाल करना उनकी जीविका हेतु आवश्यक था। इसलिए विभिन्न तरीकों से उन्होंने सरकारी नियंत्रण का विरोध किया। 1913 तक मद्रास प्रेसीडेंसी में यह जन विद्रोह इतना बढ़ गया कि गढ़वाल (हिमालय) के एक अंग्रेजी अधिकारी ने यह तक कह दिया कि 'वन प्रशासन का मुख्य काम अधिकतर ग्रामवासियों से लड़ना ही हैं'*(*Guha: 1989*)[46] इस दौरान हुए अधिकतर विद्रोह सरकारी मुठभेड़ न होकर सरकारी खजाने से अनाज की चोरी वन कानूनों का उल्लंघन व प्रबंधंन पर सगठित विद्रोह के रूप मे उभरे।(*ibid*) इस दौरान देश के अन्य क्षेत्रों में जन विद्रोह का अन्य कारण साइंटिफ़िक फ़ॉरेस्ट्री रहा क्योकि इसके माध्यम से मिश्रित वन प्रणाली को नकार कर फ़ायदेमंद व व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी

43 Gadgil, M. and Guha, R. (2010). *This Fissured Land: An Ecological History of India*- pp. 185-192, Delhi, Oxford University Press.

44 Pathak, A. (1994)- *Contested Domains: The State Peasents and Forests in Contemporary India*- New Delhi, Sage Publications.

45 Singh, C. (1986). *Common Property and Common Poverty: India's Forests, Forest Dwellers and the Law*- Delhi, Oxford University Press, Bombay, Calcuta, Madrass.

46 Guha, R. (1989)- *The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance In the Himalaya*- New Delhi, Oxford University Press.

वृक्षों के उत्पादन को बढ़ावा दिया गया। स्थानीय लोगों द्वारा अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह का अन्य कारण 'लीज़ प्रक्रिया' द्वारा वनों का दोहन भी रहा। उदाहरणत: गढ़वाल (हिमालय) में अंग्रेजों ने कई घने आबादी वाले वनों को स्थानीय राजाओं व रजवाड़ो से लीज़ पर लेकर वनों का असीमित दोहन किया।[47] साथ ही वनों में रहने वाले व वनों के आस पास रहने वाले समुदायों के वनों पर अधिकार को पूर्णतः नकार दिया। परिणामस्वरूप 1865 से 1925 तक अंग्रेजों ने अपने हितों के अनुसार इन वनों का इस्तेमाल किया जिसके चलते इस दौरान अंग्रेजों ने अकेले गढ़वाल क्षेत्र से सोलह लाख रूपये अधिक मुनाफ़ा कमाया। [48]

इसी दौरान यह भी सामने आया कि व्यापारी क्षेंत्र में जानवरो की खाल की माँग बढ़ी जिसका कारण वनों में अधांधुंध किया जाने वाला शिकार था। नीलगिरी में एक अंग्रेज अधिकारी ने 1860 मे 400 हाथियों को मार डाला।[49] इसके परिणामस्वरूप जो समुदाय कभी कभार अपनी जीविका के लिये शिकार करते थे अब उनसे उनका शिकार करने का अधिकार भी छिन लिया गया (*Rangarajan: 2012*)[50] अन्य उदाहरण बस्तर का है जिसमें स्थानीय देशी रियासतों ने झूम खेती को रोक दिया जिसके कारण वहाँ भी विद्रोह उठे उदाहरण 1910 में बस्तर राज्य में आदिवासीजनजातियों ने विद्रोह किया जिसका कारण बंजारा व खानाबदोश समुदायों से उनका खेती करने का अधिकार छिनना था।[51]

9. जन विद्रोह, सामुदायिक अधिकाररू पर्यावरणवादियों और अन्य इतिहासकारों के नजरिये से

सामुदायिक वन अधिकारों के संदर्भ में कभी भी स्पष्ट मत नही रहें। जैसे औपनिवेश्कि दौर में वनों पर सामुदायिक अधिकार व औपनिवशिक नियंत्रण को अंग्रेजी इतिहासकारों ने भारत में कानून के शासन की बहाली कहा तो वहीं मार्क्सवादियो ने पूँजीवादी हथकंडा। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही रही। इस संदर्भ में 'कानूनी ज्ञान' (*Legal Knowledge)* के पक्ष के विद्धानों का मानना है कि कानूनी ज्ञान अंत और कारण दोनों में लिया जा सकता हैं। कानून का इस्तेमाल वह उदारवादी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सत्तावादी शासन अपना नियंत्रण न्यायिक तौर से वैध घोषित करता हैं। जैसे 1864 में अंग्रेजी साम्राज्य ने वन विभाग की स्थापना कर के किया (*Weil: 2006*)[52] नंदनी सुन्दर कानून के इस सत्तावादी नजरिये के विषय में कहती है कि कानून की भूमिका हमेशा यह नही रही है कि वह सीधे ही पूँजीवादी राज्य के फ़ैलाव में काम करें। अपितु कभी-कभी कानून पारस्परिक ढ़ाँचों को बचाए रखने के लिए बनाए जाते है जिसके चलते नीजि जमीन से बेदखली और पूँजीवादी उत्पादन संबंधो का विकास बाधित हुआ। वहीं वनों पर सामुदायिक अधिकारों के बहिष्करण को लेकर अन्य विचारकों का मानना है कि वनों पर अधिकारों को पहले 'सुविधा' ़फिर सुविधा से 'रियायत' और ़फिर रियायत से अंततः 'बहिष्करण' में बदल दिया गया। जो वनों पर निर्भर समुदायों के जन विद्रोह का मुख्य कारण था।

इस तरह चाहे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोह का तरीका व समय अलग रहा हो परन्तु वन सम्पदा पर आदिवासियों की पारम्परिक दावेदारी और वनों पर सामुदायिक अधिकारों की मांग ही सभी विद्रोहो के केन्द्र में रही (*Guha: 1985*)[53] सामुदायिक अधिकारों की संकल्पना वनों पर निर्भर आदिवासियों ने सामुदायिक साझेदारी के तहत गढ़ी थी वह अब छीन चुकी थी। एक विवरण के अनुसार 1913 से 1921 तक गढ़वाल के कुमाऊ क्षेत्र के ज्यादातर हिस्सों में पहला असहयोग आन्दोंलन देखा गया। इस आन्दोंलन में लोगों ने आंरक्षित वन क्षेत्रों को पुनः गैर आंरक्षित कर सामुदायिक अधिकारों की स्थापना की माँग की क्योकि वनों के आंरक्षण का मतलब आदिवासियों के निवास स्थान के साथ उनकी सांस्कृतिक धार्मिक परम्पराओं की मान्यताओं व जीविका का पूर्णतः खंड़ीत होना था। वनों पर निर्भर समुदायों की सामुदायिक निर्भरता और मान्यता को उजागर करने के लिए रंगराजन व शिवरामकृष्णन ने अपनी पुस्तक ^*India's Environmental History : Colonialism, Modernity and the Nation** में कहा है 'कि आज भी टिहरी के एक हिस्से में लोग कुछ पेड़ों को पूजनिय मानते हुए उसे देवी को अर्पित करते है जिसे 'पटाना देवी' के नाम से जाना जाता हैं।' रंगराजन के मतानुसार यह समुदाय ऐसा वनों पर निर्भर अपनी धार्मिक मान्यताआें व आस्था के कारण करते है जो इन्हें आपसी रूप से बांधे रखती हैं (*Rangarajan: 2012*)[54]

आदिवासियों की इन सामुदायिक मान्यताओं के सन्दर्भ में पर्यावरणवादियों ने औपनिवेशिक दौर से ही राज्य की हस्तक्षेपवादी प्रवृति को आदिवासीजीवन के लिये हानिकारक माना क्योकि इनका मानना है कि आदिवासियों के सामुदायिक अधिकारों का खंड़न निजि सम्पत्ति की संकल्पना द्वारा किया गया। जिसने सामुदायिक सम्पत्ति के स्थान पर 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' की निजि संकल्पना की नींव रखी। इसी कारण 'पर्यावरणवादी' (*Ecologicalist*)सरकार द्वारा अपनाई गई 'पट्टा व्यवस्था' की निंदा करते हैं। वहीं 'गाँधीवादी पर्यावरणवादियों' ने वनों के नियंत्रण व हकदारी हेतु

47 Gadgil, M. and Guha, R. (1992). *This Fissured Land: An Ecological History of India*- Delhi Oxford University Press, Mekbourne.

48 ibid, pp.142-143.

49 ibid.

50 Rangarajan, M. and Sivaramakrishnan, K. (2012). *India's Environmental History: Colonialism, Modernity and the Nation% A Reader, vol. 2*, pp. 429-516, New Delhi, Permanent Black.

51 Sundar, N. (2009). *Gunda Dhur Ki Talash Mein% Edited Jitender Kumar and Harish Chandra Agarwal*. New Delhi, Penguin Books.

52 Wilkinson, R. G. (1988). *The English Industrial Revolution*- Cambridge, Cambridge University Press.

53 Gadgil, M. (1985). "Towards An Ecological History of India", *Economic and Political Weekly*, pp. 910-918.

54 Gadgil, M. (1985). "Towards An Ecological History of India" *Economic and Political Weekly Vol.20, Number 45/47 November* (pp. 1909-1911+1913+1915+1917-1918).

केवल सुधारवादी नजरिया अपनाया।[55] पर्यावरणवादियों का मानना है कि वनों में रहने वाले समुदाय वनों पर अपनी जीविका हेतु ही नही अपितु अपनी सास्कृतिक, सामाजिक मान्यताआ के कारण भी वनों पर निर्भर होते हैं। इसलिए वनों पर पहला अधिकार आदिवासी समुदायों का ही हैं। इसी तरह राष्ट्रªवादी समुदायवादियो ने भी वनों पर आदिवासीनियंत्रण की बात कही। साथ ही यह दावा भी किया कि स्थानीय समुदाय ही है जो उमदा तरीकों से प्राकृतिक स्त्रेतों का सरंक्षण कर सकते है क्योकि इनकी सम्पूर्ण जीविका इन सन्तुलित प्राकृतिक स्त्रेतों के इस्तेमाल पर निर्भर होती हैं (*Rangarajan: 2013*)A[56] इस तरह वनों पर सार्वजनिक हकदारी के लिए जन विद्रोह वन प्रबंधन के दो मुख्य कारणों पर केन्द्रित रहा। पहला वनों पर स्वामित्व को सार्वजनिक करना व सरकार का सम्पूर्ण नियंत्रण वन सम्पदा से हटाया जाना और दूसरा कारण जीविका व धार्मिक मान्यता प्रधान दृष्टिकोण रहा। इसी विषय में पर्यावरणवादियों ने औपनिवेशिक नियंत्रण का जिम्मेदार सामाजिक पहलुओं से अनजान होना व विकास योजनाओं के साथ वैज्ञानिक सोच पर निर्भर रहना माना। जो वास्तव में संसाधनों के शोषण और उस पर निर्भर लाखों आदिवासियों की दरिद्रता और सामुदायिक अधिकारों के शोषण का कारण रहा।

10.निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण में मुख्य इस बात पर गौर किया जाना महत्वपूर्ण है कि जितने भी विचारक आदिवासीअधिकारों के समर्थक है उन्होंने अंग्रेजी कानूनी नीति के साथ साथ सम्पूर्ण कानून व्यवस्था को ही आदिवासीअधिकारों के लिये घातक माना। साथ ही उनके विवरण से यह भी उभर कर आता है कि वह पूर्ण रूप से आदिवासियों के भूमि अधिकारों के संबंध में सम्पति अधिकारों के समर्थक हैं जो स्पष्ट रूप में भारतीय कानून व्यवस्था के मौलिक रूप को नकारता है। मसलन इन्हीं मुद्दों को आधार बना कर अब तक यह वामपंथी, माओवादी और मार्क्सवादी आदिवासियों के मुद्दों को अपने हितों की पूर्ति के लिये एक समस्या के रूप में इस्तेमाल करने आ रहे है। आलम यह है कि आज यह विचारधारा इतनी देश विरोधी बन चुकी है कि यह आज आंतरिक शांति के समकक्ष एक चुनौति है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Bardhan, P. (1984). The Political Economy of Development in India. pp.10, Oxford, Blackwell.

Chatterjee P. (2009). The Politics of Governed: Reflection on the Popular Politics In Most of the World- New Delhi, Permanent Black.

Ecological Romanticism: Verrier Elwin and the Making of Anti Modern Tribal Identity- New Delhi, Three Essays Collective.

Gadgil, M. and Guhas, R. (1992). This Fissured Land: An Ecological History of India- Delhi Oxford University Press, Mekbourne.

Gadgil, M. (1985). "Towards An Ecological History of India", Economic and Political Weekly, pp. 910-918.

Guha, R. (1989)- The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance In the Himalaya- New Delhi, Oxford University Press.

Guha, R. (1983). "Forestry in British and Post-British India: A Historical Analysis** Economic and Political Weekly, Vol. 18.

Guha, R. (1989). "Scientific Forestry and Social Change in Uttrakhand" Economic and Political Weekly, vol. 20.

Kaviraj, S. (1997). Politics in India- Delhi, Oxford University Press.

55 व्यक्तिगत सम्पत्ति के विषय में पर्यावरणवादियों का मत यह है कि अंग्रेजों के भारत आने से पहले वनों के संदर्भ में आदिवासियों ने कभी भी वन भूमि या वन सम्पदा को निजि सम्पत्ति नही माना वो तो वनों और वन से प्राप्त उत्पादों को केवल प्रकृति की देन मानते थे जिस पर सभी का समान अध्किार था। परन्तु अंग्रेजों ने यहाँ की वन भूमि पर अध्पित्य जमाने के लिये वन कानूनों का निर्माण किया ताकि वह व्यवस्थित रूप से वनों का दोहन कर आदिवासी समुदायों को उन्ही की भूमि से वंचित कर सकें। विस्तृत विवरण के लिये देखें Prasad, A. (2004). *Environmentalism and the Left: Contemporary Debates and Future Agendas In Tribal Areas*- New Delhi, pp. 31-35, Left Word.

56 Rangarajan, M. (2010). *Environmental Issues in India*- New Delhi, Pearson.

Pathak, A. (1994). Contested Domains: The State, Peasants and Forests In Contemporary India- New York, Sage Publications.

Prasad, A. (2004). Environmentalism and the Left: Contemporary Debates and Future Agendas In Tribal Areas- New Delhi, Left Words.

Poulantzas, N. (1978). Political Power and Social Classes- London: Verso

Rangarajan, M. and Sivaramakrishnan, K. (2012). India's Environmental History: Colonialism, Modernity and the Nation A Reader, vol. 2, New Delhi, Permanent Black.

Rangarajan, M. (1996). Fencing the Forest: Conservation and Ecological Change in India's Central Provinces, 1860-1914- Delhi, Oxford University Press.

Singh, C. (1986). Common Property and Common Poverty: India's Forests, Forest Dwellers and the Law- Delhi, Oxford University Press, Bombay, Calcuta, Madrass.

Tucker, R. P. (2012). A Forest History of India- in Forest Management and Imperal Politics Thana District Bombay 1823-1887. New Delhi, Sage Publications.

Singh, C. (1986). Common Property and Common Poverty: India's Forests, Forest Dwellers and the Law- Delhi, Oxford University Press.

Therborn, G. (1980). What Does the Ruling Class Do When It Rules? London: Verso

Wilkinson, R. G. (1988). The English Industrial Revolution- Cambridge, Cambridge University Press.

Weil, B. (2006)- Conservation, Exploitation and Culture In the Forest Service 1875-1927- Economic and Political Weekly